

# विचारों की सृजनात्मक शक्ति

— श्रीराम शर्मा आचार्य

# विचारों की सृजनात्मक शक्ति

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. : ०९९२७०८६२८९, ०९९२७०८६२८७

पुनरावृत्ति सन् : २००९

मूल्य : ७.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

पुनरावृत्ति सन् २००९

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस,  
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

# विधेयात्मक चिंतन की फलदायी परिणतियाँ

जीवन की अन्यान्य बातों की अपेक्षा सोचने की प्रक्रिया पर सामान्यतः कम ध्यान दिया गया है, जबकि मानवी सफलताओं-असफलताओं में उसका महत्वपूर्ण योगदान है। विचारणा की शुरुआत मान्यताओं अथवा धारणा से होती है, जिन्हें या तो मनुष्य स्वयं बनाता है अथवा किन्हीं दूसरे से ग्रहण करता है या वे पढ़ने, सुनने और अन्यान्य अनुभवों के आधार पर बनती हैं। अपनी अभिरुचि के अनुरूप विचारों को मानव मस्तिष्क में प्रविष्ट होने देता है जबकि जिन्हें पसंद नहीं करता उन्हें निरस्त भी कर सकता है। जिन विचारों का वह चयन करता है उन्हीं के अनुरूप चिंतन की प्रक्रिया भी चलती है। चयन किए गए विचारों के अनुरूप ही दृष्टिकोण का विकास होता है। जो विश्वास को जन्म देता है, वह परिपक्व होकर पूर्वधारणा बन जाता है। व्यक्तियों की प्रकृति एवं अभिरुचि की भिन्नता के कारण मनुष्य-मनुष्य के विश्वासों, मान्यताओं एवं धारणाओं में भारी अंतर पाया जाता है।

चिंतन पद्धति में अर्जित की गई भली-बुरी आदतों की भी भूमिका होती है। स्वभाव-चिंतन को अपने ढर्रे में घुमा भर देने में समर्थ हो जाता है। स्वस्थ और उपयोगी चिंतन के लिए उस स्वभावगत ढर्रे को भी तोड़ना आवश्यक है जो मानवी गरिमा के प्रतिकूल है अथवा आत्मविकास में बाधक है।

प्रायः अधिकांश व्यक्तियों का ऐसा विश्वास है कि विशिष्ट परिस्थिति में मन द्वारा विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त करना मानवी प्रकृति का स्वभाव है, पर वास्तविकता ऐसी है नहीं। अभ्यास द्वारा उस ढर्रे को तोड़ना हर किसी के लिए संभव है। परिस्थिति विशेष में लोग प्रायः जिस ढंग से सोचते एवं दृष्टिकोण अपनाते हैं, उससे भिन्न स्तर का चिंतन करने के लिए भी अपने मन को अभ्यस्त किया जा सकता है। मानसिक विकास के लिए, अभीष्ट दिशा में सोचने के लिए अपनी प्रकृति को मोड़ा भी जा सकता है।

मन विभिन्न प्रकार के विचारों को ग्रहण करता है, पर जिनमें उसकी अभिरुचि रहती है, चयन उन्हीं का करता है। यह रुचि पूर्वानुभवों के आधार पर बनी हो सकती है, प्रयत्नपूर्वक नई अभिरुचियाँ भी पैदा की जा सकती हैं।

प्रायः मन एक विशेष प्रकार की ढर्रे वाली प्रतिक्रियाएँ मात्र दर्साता है, पर इच्छित दिशा में उसे कार्य करने के लिए नियंत्रित और विवश भी किया जा सकता है। बंदरों की तरह उछल-कूद मचाना उसका स्वभाव है। एक दिशा अथवा विचार विशेष पर वह एकाग्र नहीं होना चाहता। नवीन विचारों की ओर आकर्षित तो होता है, पर उपयोगी होते हुए भी उन पर टिका नहीं रह पाता। कुछ ही समय बाद उसकी एकाग्रता भंग हो जाती तथा वह परिवर्तन चाहने लगता है। पर अभ्यास एवं नियंत्रण द्वारा उसके बंदर स्वभाव को बदला भी जा सकता है। यह प्रक्रिया समयसाध्य होते हुए भी असंभव नहीं है। एक बार एकाग्रता का अभ्यास बन जाने से जीवनपर्यंत के लिए लाभकारी सिद्ध होता है।

सोचने की प्रक्रिया में विषयों पर एकाग्रता ही नहीं स्वस्थ और सही दृष्टिकोण का होना भी आवश्यक है। किसी भी विषय पर दो प्रकार से सोचा जा सकता है—विधेयात्मक भी, निषेधात्मक भी। परस्पर विरोधी दोनों ही दिशाओं में एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को हर व्यक्ति जानता है कि निषेधात्मक चिंतन से मनुष्य की वैचारिक क्षमताओं में हास होता है। विधेयात्मक दृष्टिकोण से ही चिंतन का सही लाभ लिया जा सकता है।

निषेधात्मक चिंतन से बचने का तरीका यह भी हो सकता है कि अपनी गरिमा पर विचार करते रहा जाए तथा यह अनुभव किया जाए कि मानव जीवन एक महान उपलब्धि है, जिसका उपयोग श्रेष्ठ कार्यों में होना चाहिए। निकृष्ट चिंतन मनुष्य को उसकी गरिमामय स्थिति से गिराता है, यह विश्वास जितना सुदृढ़ होता चला जाएगा, विधेय चिंतन को उतना ही अधिक अवसर मिलेगा।

पूर्वाग्रहों से ग्रसित होने पर भी सही चिंतन बन नहीं पड़ता। किसी विचारक का यह कथन शत-प्रतिशत सच है कि जो जितना पूर्वाग्रही

हो, वह चिंतन की दृष्टि से उतना ही पिछड़ा होगा। परिवर्तनशील इस संसार में मान्यताओं एवं तथ्यों को बदलते देरी नहीं लगती। अतएव मन-मस्तिष्क को सदा खुला रखना चाहिए ताकि यथार्थता से वंचित न रहना पड़े। खुले मन से हर औचित्य को बिना किसी ननुच के स्वीकार करने के लिए तैयार रहना चाहिए। तथ्यों की ओर से आँखें बंद रखने पर कितनी ही जीवनोपयोगी बातों से वंचित रह जाना पड़ता है।

किसी विषय पर एकांगी चिंतन भी सही निष्कर्षों पर नहीं पहुँचने देता। उस चिंतन में मनुष्य की पूर्वमान्यताओं का भी योगदान होता है। सही विचारणा के लिए यह भी आवश्यक है कि अपनी पूर्व मान्यताओं, आग्रहों तथा धारणाओं का भी गंभीरता से पक्षपातरहित होकर विश्लेषण किया जाए। पक्ष और विपक्ष दोनों पर ही सोचा जाए। किसी विषय पर एक तरह से सोचने की अपेक्षा विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखकर चिंतन किया जाए। स्वस्थ और यथार्थ चिंतन तभी बन पड़ता है। एकांगी मान्यताओं एवं पूर्वाग्रहों को तोड़ना संभव हो सके तो सर्वांगीण प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सकता है।

विचारों का सही विश्लेषण सतही स्तर पर कर सकना संभव नहीं है। घटना अथवा विषय विशेष की परिस्थिति की गहराई में जाए बिना विचारणा के निष्कर्ष भी अधूरे, एकांगी और कभी-कभी गलत होते हैं। उल्लेखनीय बात यह भी है कि विचार-विश्लेषण की सही प्रक्रिया अपने ही बलबूते संपन्न की जा सकती है, न कि दूसरे के सहयोग से। सामयिक रूप से कोई वैचारिक सहयोग, सुझाव एवं परामर्श दे भी सकता है, पर हर क्षण अपने विचारों का निरीक्षण मात्र मनुष्य स्वयं ही कर सकता है। सही ढंग से उचित-अनुचित का विश्लेषण एवं चयन भी वही कर सकता है। कहा जा चुका है कि विचारणा में पूर्व अनुभवों एवं आदतों की भी पृष्ठभूमि होती है। इस तथ्य से दूसरे व्यक्ति परिचित नहीं होते। अपनी वैचारिक पृष्ठभूमि का हर व्यक्ति थोड़े प्रयत्नों से स्वयं पता लगाकर उसमें आवश्यक हेर-फेर कर सकता है। आत्मविश्लेषण के लिए मन एवं उसकी प्रवृत्तियों को विवेक

के नेत्रों से देखना पड़ता है। कठिन होते हुए भी यह कार्य असंभव नहीं है।

क्या उचित है और क्या अनुचित? कौन सा कार्य औचित्यपूर्ण है, कौन सा अनौचित्य से भरा इसका पता लगाना असंभव नहीं है, हर कोई थोड़े प्रयास से इसमें अपने को दक्ष कर सकता है।

एक समय में एक से अधिक विषयों पर चिंतन करने से भी उथले परिणाम हाथ लगते हैं। एकाग्रता न बन पाने से विषय की गहराई में जाना संभव नहीं हो पाता। एक से अधिक विषयों पर एक साथ विचार करने से विचारों में भटकाव आता है, किसी उपयोगी परिणाम की आशा नहीं रहती। कई बातों में विचारों को भटकने देने की खुली छूट देने की अपेक्षा उपयोगी यह है कि एक समय में एक विषय पर सोचा जाए और जितना सोचा जाए पूरे मनोयोगपूर्वक। मनीषी, विचारक, वैज्ञानिक, कलाकार, साहित्यकार कुछ महत्त्वपूर्ण समाज को इसीलिए दे पाते हैं कि वे अपने विचारों को भटकने-बिखरने नहीं देते। एक ही विषय के इर्द-गिर्द पूरी तन्मयता के साथ उन्हें घूमने देते हैं, सार्थक परिणति भी इसीलिए होती है।

कर्म-विचारों के गर्भ में ही पकते हैं। जैसे भी विचार होंगे उसी ढंग की गतिविधि मनुष्य अपनाएगा। जो प्रयास को सफल, उपयोगी और कल्याणकारी बनाना चाहते हैं, उन्हें सर्वप्रथम अपनी विचारणा की प्रक्रिया से अवगत होना चाहिए। अनुपयोगी निषेधात्मक को सुधारने, बदलने तथा उपयोगी को बिना किसी असमंजस के स्वीकारने के लिए सतत तैयार रहना चाहिए।

### चिंतनक्रम व्यवस्थित हो

जीवन एक लंबा पथ है जिसमें कितने ही प्रकार के झंझावात आते रहते हैं। कभी संसार की प्रतिकूल परिस्थितियाँ अवरोध खड़ा करती हैं तो कभी स्वयं की आकांक्षाएँ ऐसे में संतुलित दृष्टि न हो तो भटकाव ही हाथ लगता है। असफलताओं के प्रस्तुत होते ही असंतोष बढ़ता जाता है तथा मनुष्य अनावश्यक रूप से भी चिंतित रहने लगता है। संतुलन के अभाव में चिंता आदत में शुमार होकर अनेकों प्रकार

की समस्याओं को जन्म देती है। अधिकांश कारण इनके निराधार ही होते हैं।

चिंता किस प्रकार उत्पन्न होती है? इस संबंध में प्रख्यात मनोवैज्ञानिक मैकडूगल लिखते हैं—“मनुष्य की इच्छाओं की आपूर्ति में जब अड़चनें आती हैं तो उसका विश्वास आशंका और निराशा में परिवर्तित हो जाता है, पर वह आई अड़चनों तथा विफलताओं से पूर्णतः निराश नहीं हो जाता, इसलिए उसकी विभिन्न प्रवृत्तियाँ अपनी पूर्ति और अभिव्यक्ति का प्रयास करती रहती हैं। सामाजिक परिस्थितियाँ तथा मर्यादाएँ मनुष्य के लिए सबसे बड़ी अवरोध बनकर सामने आती हैं तथा इच्छाओं की पूर्ति में बाधक बनती हैं, जिससे उसके मन में आंतरिक संघर्षों के लिए मंच तैयार हो जाता है। इसी में से असंतोष और चिंता का सूत्रपात होता है, अनावश्यक चिंता उत्पत्ति के अधिकांश कारण मनोवैज्ञानिक होते हैं।”

एक सीमा तक चिंता की प्रवृत्ति भी उपयोगी है, पर जब वह मर्यादा सीमा का उल्लंघन कर जाती है तो मानसिक संतुलन के लिए संकट पैदा करती है। व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन से जुड़े कर्तव्यों के निर्वाह की चिंता हर व्यक्ति को होनी चाहिए। बच्चों के स्वास्थ्य, शिक्षण एवं विकास की, उन्हें आवश्यक सुविधाएँ जुटाने की चिंता अभिभावक न करें, अपनी मस्ती में डूबे रहें। भविष्य की उपेक्षा करके वर्तमान में तैयारी न करें तो भला उनके उज्ज्वल भविष्य की आशा कैसे की जा सकती है? विद्यार्थी खेलकूद में ही समय गँवाता रहे, आने वाली परीक्षा की तैयारी न करे तो उसके भविष्य का अंधकारमय होना सुनिश्चित है।

‘जो होगा सो देखा जाएगा’—किसान यह नीति अपनाकर फसलों की देखरेख करना छोड़ दे, निराई-गुड़ाई करने की व्यवस्था न बनाए, खाद-पानी देना बंद कर दे तो फसल को चौपट होते देर न लगेगी। व्यवसाय में व्यापारी बाजार भाव के उतार-चढ़ाव के प्रति सतर्क न रहे तो उसकी पूँजी को डूबते देर न लगेगी। सीमा प्रहरी रातोदिन पूरी मुस्तैदी के साथ सीमा पर डटे चहलकदमी करते रहते हैं। सुरक्षा की चिंता वे



न करें तो दुश्मन-घुसपैठियों से देश को खतरा उत्पन्न हो सकता है। मनीषी, विचारक, समाजसुधारक, देशभक्त, महापुरुष का अधिकांश समय विधेयात्मक चिंतन में व्यतीत होता है। उन्हें देश, समाज, संस्कृति ही नहीं, समस्त मानव जाति के उत्थान की चिंता होती है। सर्वजनीन तथा सर्वतोमुखी प्रगति के लिए वे योजना बनाते और चलाते हैं। यह विधेयात्मक चिंता ही है, जिसकी परिणति रचनात्मक उपलब्धियों के रूप में होती है।

मानव जीवन वस्तुतः अनगढ़ है। पशु-प्रवृत्तियों के कुसंस्कार उसे पतन की ओर ढकेलने के लिए सतत प्रयत्नशील रहते हैं। उनकी अभिप्रेरणा से प्रभावित होकर इंद्रियों को मनमानी बरतने की खुली छूट दे दी जाए तो सचमुच ही मनुष्य पशुओं की श्रेणी में जा बैठेंगे, पर यह आत्मगरिमा को सुरक्षित रखने की चिंता ही है जो मनुष्य को पतन के प्रवाह में बहने से रोकती है। मानवी काया में नरपशु भी होते हैं जिनका कुछ भी आदर्श नहीं होता, परंतु जिनमें भी महानता के बीज होते हैं, वे उस प्रवाह में बहने से इनकार कर देते हैं। सुरक्षा प्रहरी की तरह वे स्वयं की प्रवृत्तियों के प्रति विशेष जागरूक होते हैं। हर विचार का, मन में आए संवेगों का वे बारीकी से परीक्षण करते हैं तथा सदैव उपयोगी चिंतन में अपने को नियोजित करते हैं।

चिंता करना मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। एक सीमा तक वह मानवी विकास में सहायक भी है। पशुओं का जीवन तो प्रवृत्ति तथा प्रकृति-प्रेरणा से संचालित होता है। शिशुनोदर जीवन वे जीते तथा उसी में आनंद अनुभव करते हैं किंतु मनुष्य की स्थिति भिन्न है। मात्र इंद्रियों की परितृप्ति से उसे संतोष नहीं हो सकता, होना भी नहीं चाहिए क्योंकि उसके ध्येय उच्च हैं। उनकी प्राप्ति के लिए उसे स्वेच्छापूर्वक संघर्ष का मार्ग वरण करना पड़ता है। यह मनुष्य के लिए गौरवमय बात भी है कि वह अपनी यथास्थिति पर संतुष्ट न रहे।

प्रख्यात यूनानी दार्शनिक सुकरात कहा करता था—“एक असंतुष्ट मनुष्य संतुष्ट पशु से कहीं अच्छा है।” सचमुच ही मनुष्य पशुओं की तरह शिशुनोदर जीवन की तृप्ति में ही संतुष्ट हो जाए तो उसका विकास अवरुद्ध हो जाएगा। मानव संस्कृति का इतिहास वस्तुतः निषेधों और

संघर्षों की एक ऐसी गाथा है, जो असंतोष से शुरू हुई पर प्रगति की एक प्रमुख आधार भी बनी। अपनी गईगुजरी स्थिति से उबरने की चिंता मानव को न हुई होती तो आज की प्रगतिशील स्थिति तक पहुँचना संभव न हो पाता।

जिस समाज में मनुष्य रहता है, उसमें अगणित प्रकार के लोग हैं। चाहते हुए भी सबको एक जैसा नहीं बनाया जा सकता। अपने आपे को बदलना सामान्य व्यक्ति के लिए कठिन पड़ता है। दूसरों की अभिरुचियाँ बदल देना और भी कठिन है। सभी अपनी मनमरजी के अनुकूल ढल जाँएँ—यह एक ऐसी हवाई कल्पना है जो कभी पूरी नहीं होती। जो ऐसी कल्पना करते अथवा सोचते हैं, वे वास्तविकता से सर्वथा अपरिचित हैं। व्यक्ति तथा समाज की अधिकांश समस्याएँ भी इसीलिए उत्पन्न होती हैं कि मनुष्य सामाजिक मनोविज्ञान को समझ नहीं पाता। अनावश्यक रूप से चिंतित तथा खिन्न होने का कारण भी यही है कि मनुष्य अपनी कल्पना के अनुरूप समाज और संसार को देखना चाहता है, इस चाह की आपूर्ति कभी नहीं हो पाती।

विभिन्न प्रकृतियों एवं अभिरुचियों वाले व्यक्तियों से, मुक्त समाज से जो जितना अधिक तालमेल बिठा लेता है, वह जीवन में उतना ही सफल रहता है। तालमेल बिठाने का अर्थ यह कदापि नहीं है कि अनौचित्य से समझौता किया जाए वरन यह है कि अच्छाई का जितना अंश जहाँ दिखाई दे उतने अंश से सामंजस्य स्थापित किया जाए। व्यक्तियों की बुराइयों को सुधारने के लिए प्रयत्न तो किया जाए, पर यदि नहीं दूर होती तो उनकी उपेक्षा की जाए। समाज में यदि प्रसन्नतापूर्वक रहना है तो सामंजस्य की प्रवृत्ति विकसित करनी होगी। दूसरों को बदलने की अपेक्षा अपने को बदलना सुगम और हितकर है।

ध्यान यह रखा जाना चाहिए कि चिंता को इस सीमा से आगे न बढ़ने दिया जाए, जिससे कि मानसिक संतुलन को ही खतरा उत्पन्न होने लगे। मनःसंतुलन को किसी भी कीमत पर नहीं गँवाया जाना चाहिए। चिंता को उतना ही महत्त्व दिया जाए जितना कि वह कर्तव्य-निर्वाह में सहायक है।



# न आत्मविश्वास खोएँ न भयाक्रांत रहें

अपने ऊपर से विश्वास खो बैठने की मनःस्थिति को 'आत्महीनता' (इन्फ़ीरियॉरिटी कॉम्प्लेक्स) कहते हैं। इसमें कोई मस्तिष्कीय विकृति नहीं होती। इसे कोई रोग भी नहीं कहा जा सकता। यह किसी कारण से आरंभ होते-होते, आत्मविश्वास गँवा बैठने की आदत भर है।

इस आदत का प्रमुख लक्षण अपने आप को तुच्छ, हीन, असमर्थ, उपेक्षित एवं पराजित मानना है। ऐसी दशा में व्यक्ति दूसरों से शरमाता है और उनसे पीछा छुड़ाने को मन होता है। कहीं ऐसी जगह छिपने का मन करता है, जहाँ दूसरे लोग देखें नहीं। देखें तो वार्त्तालाप न करें। उसे एक प्रकार का डर सा लगता है। यह डर किस बात का? कोई मारेगा या त्रास देगा ऐसा भय तो नहीं होता? पर इतना जरूर होता है कि अपने ऊपर से भरोसा उठ जाता है और लगता है कि दूसरों से संबंध साधने पर या तो निंदा होगी या कुछ ऐसा बन पड़ेगा जिसका अर्थ होता है—पराजित या अपमानित होना।

वस्तुतः ऐसी कोई बात नहीं होती कि दूसरे लोग बुरा इरादा रखते हों। द्वेष मानते हों या गिराने, डराने के लिए मिले हों, पर दूसरों के साथ मिलने-जुलने आत्मीयता विकसित करने की सामर्थ्य भीतर से टूट जाती है तो मन की बात किसी के सामने प्रकट करने की हिम्मत नहीं रहती। हौसला पस्त हो जाता है और मिलने पर यही डर बना रहता है कि न जाने कोई क्या पूछ बैठे? उसका उत्तर अपने से बने या नहीं? कुछ उत्तर दिया जाए तो उपहास या विरोध तो न होने लगे?

यों अकारण कोई किसी से लड़ता नहीं और न तिरस्कार की दृष्टि से मिलता-जुलता ही है। सभी को विचारों का आदान-प्रदान करने की-अपनी कहने दूसरे की सुनने की इच्छा होती है क्योंकि



वह मनोरंजन का सुगम और अच्छा तरीका है, पर साथ ही यह भी आवश्यक है कि सामने वाले भी मिलनसार हों। वह अकारण दोषी की तरह झेंपता-झिझकता न हो। अन्यथा उपेक्षा दिखाने पर, दबे-दबे, धीमे-धीमे शब्दों में कुछ उत्तर देने में अपनी ओर से वार्त्तालाप न करने से दूसरा आदमी भी खीझता नहीं तो कम से कम इतना तो करता ही है कि लोकाचार की सामान्य वार्त्ता करने के उपरांत अपना मुख मोड़ ले और किसी से बात करने लगे। यह स्वाभाविक भी है, पर वह झेंपू व्यक्ति इसे भी अपनी उपेक्षा या पराजय मानता है और इस मिलन पर कोई प्रसन्नता व्यक्त नहीं करता।

देहाती परंपरा के अनुसार नववधुओं को कई दिन तक घूँघट निकालकर चुपचाप किसी कोने में पीठ फेरकर बैठा रहना पड़ता है। कुछ कहना हो तो इतने धीमे शब्दों में अति संक्षेप में या इशारे से अपनी बात कहती हैं। पुरातनपंथी वृद्धाएँ इस संकोचशीलता को सराहती भी हैं और ऊँचे कुल-खानदान की बात कर उसे सराहती हैं। कई पुरुष भी ऐसी ही मनःस्थिति के होते हैं-संकोचशील या डरपोक। इससे सर्वत्र अजनबी वातावरण ही दिखते और परिचित भी अपरिचित जैसे लगते हैं और खुलकर वार्त्तालाप करते हुए उन्हें संकोच सताता है। अपनी व्यथा एवं समस्या तक मुँह खोलकर कह नहीं पाते फिर दूसरों का परामर्श या समाधान प्राप्त करने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

आमतौर से अशिक्षित महिलाओं में यह दोष उन क्षेत्रों में अधिक पाया जाता है, जहाँ घूँघट-परदे का रिवाज अधिक होता है। वे घुटती रहती हैं, पर अपनी कठिनाइयों को कह नहीं पातीं। लगाए गए दोषारोपणों को निर्दोष होते हुए भी सुनती रहती हैं। उत्पीड़न-शोषण भी सहती हैं, पर आँसू बहाने के और चुप रहने के अतिरिक्त और कुछ कह नहीं पातीं। चुप रहना भी अर्द्धस्वीकृति मानी जाती है। जहाँ दोषारोपण पर सर्वथा चुप रहना-शालीनता का चिह्न माना जाता है। वहाँ उससे यह भी प्रकट होता है कि आक्षेप सही है अन्यथा सफाई क्यों नहीं दी गई। ऐसी महिलाओं पर गुंडे-बदमाश भी घात लगाते और छेड़खानी करने

में नहीं चूकते क्योंकि उन्हें यह भय नहीं रहता कि विरोध का सामना करना पड़ेगा। असहाय भेड़-बकरियों की तरह हर कोई उन्हें सताने को बैठा रहता है।

ठीक यही बात पुरुषों के संबंध में भी है। कोई चापलूस उन्हें आध्यात्मिक, दार्शनिक, सज्जन, गंभीर आदि भी कह सकते हैं, पर असल में उन्हें मूर्ख, प्रतिभाहीन और अयोग्य ही समझा जाता है। निरर्थक वाचालता अपनाने वाले भी अपना मूल्य महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की आँखों में गिरा लेते हैं, पर यह भी स्पष्ट है कि डरपोक और अनावश्यक संकोचशील अपनी योग्यता में कमी होने का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं और जहाँ जाते हैं, वहीं घाटा उठाते हैं। असामाजिक, गैर-मिलनसार व्यक्तियों से कोई प्रसन्न नहीं रहता। उन पर दुराव या दोष लगता है और चाहते हुए भी कुछ परामर्श या सहयोग दे सकने की स्थिति तक नहीं पहुँच पाता। इस प्रकार यह आदत मनुष्य को पग-पग पर नीचा दिखाने वाली ही सिद्ध होती है। ऐसे लोग जीवन में कभी महत्त्वपूर्ण सफलता अर्जित नहीं कर सकते। भले ही वे भाग्य को, समय को या संबंधियों को इसके लिए दोषी ठहराते रहें। अस्तु, जिन्हें भी इस व्यथा ने घेर लिया हो, उन्हें इसके दुष्परिणाम समझने चाहिए और धीरे-धीरे मिलनसारी की, वार्त्तालाप की और हँसने-हँसाने की आदत डालनी चाहिए। अपनी कहने और दूसरे की सुनने वाले सहज ही अपने मित्र बढ़ा लेते हैं और शत्रुता की लकीरों को धोकर सहज ही साफ कर देते हैं।

उससे अगला चरण है—भयाक्रांत रहने का। इसकी मानसिक रोगों में भी गणना होती है और उपचार के लिए चिकित्सकों, मनोविज्ञानियों एवं भूत झाड़ने वाले ओझाओं का दरवाजा खटखटाना पड़ता है। इस भयाक्रांत मनःस्थिति को चिकित्सकों की भाषा में 'फोबिया' कहते हैं। इसे सनक की तुलना में अधिक कष्टप्रद मानते हैं। सनकी व्यक्ति कल्पना करता है और बिना प्रमाण की खोजबीन की आवश्यकता समझे अशुभ मान्यताएँ गढ़ लेता है और उसी दुराग्रह के कारण अपना और दूसरों का अनर्थ करता है। उन पर

किसी के समझाने का भी असर नहीं पड़ता। ऐसे लोगों की अर्द्ध-विक्षिप्तों में गणना होती है। सनकी लोग उन्मादियों की तरह बिना आगा-पीछा सोचे कुछ भी भला-बुरा कर सकते हैं। वे किसी की बात पर ऐसा भरोसा भी कर सकते हैं जैसा कि अंध-विश्वासी करते हैं। आवेश उतरने पर उन्हें पछताते, सिर धुनते देखा गया है।

'फोबिया' भयाक्रांत मनःस्थिति के रोगी हर समय डरते रहते हैं और कारण न होने पर भी कल्पना के सहारे गढ़ लेते हैं। ऐसे लोग वयस्क होते हुए भी अँधेरे में उठकर पेशाब तक नहीं जा सकते। चूहों की खट-खट उन्हें चोरों की सेंघ लगाने जैसी प्रतीत होती है। झुरमुट या पेड़ की हिलती डालियाँ भूत-चुड़ैलों जैसी लगती हैं। ऐसे लोग ज्योतिषियों के चंगुल में आसानी से फँस जाते हैं। डर का लाभ उठाकर ग्रहशांति करने वाले या भूत भगाने वाले उनकी उलटे उस्तरे से हजामत बनाते रहते हैं।

भयाक्रांत के मन में निरंतर आक्रमण, प्रतिशोध और विश्वासघात छाया रहता है। वे अकारण अपना जीवन भार बना लेते हैं और मित्रों पर भी शत्रुओं जैसे आरोप लगाते हैं। भविष्य उन्हें कठिनाइयों और विपत्तियों से भरा हुआ दीखता है।

इस मनःस्थिति को अपने भीतर विवेकशीलता, यथार्थवादिता साहसिकता अपनाकर दूर किया जा सकता है। यह कार्य भले ही स्वयं कर लिया जाए या किसी विचारशील का आश्वासन-प्रोत्साहन उपलब्ध कर लिया जाए।

### आत्मविश्वास ही सफलता का मूल-मंत्र

स्वामी रामतीर्थ कहते थे— "धरती को हिलाने के लिए धरती से बाहर खड़े होने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है आत्मा की शक्ति को जानने-जगाने की।" इस उक्ति में आत्मा की शक्ति की उस महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, जिसका दूसरा नाम आत्मविश्वास है। जिसका साक्षात्कार करके कोई भी व्यक्ति अपने परिवार में तथा अपने में आशातीत परिवर्तन कर सकता है। विवेकानंद, बुद्ध, ईसा,



सुकरात और गांधी की प्रचंड आत्मशक्ति ने युग के प्रवाह को मोड़ दिया। अभी हाल के स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी ने सशक्त ब्रिटिश साम्राज्य की नींव उखाड़ दी। उन्होंने अपनी दृढ़ संकल्प शक्ति तथा आत्मविश्वास के सहारे अँगरेजों को भारत छोड़ने पर विवश किया। स्वामी विवेकानंद एवं रामतीर्थ जब संन्यासी का वेश धारण कर अमेरिका गए तो उपहास के पात्र बने, किंतु बाद में उन्होंने आत्मविश्वास के सहारे विश्व को जो कुछ दिया, वह अद्वितीय है।

आत्मविश्वास के समक्ष विश्व की बड़ी से बड़ी शक्ति झुकती रहेगी। इसी आत्मविश्वास के सहारे आत्मा और परमात्मा के बीच तादात्म्य उत्पन्न होता है तथा अजस्र शक्ति के स्रोत का द्वार खुल जाता है। कठिन परिस्थितियों एवं हजारों विपत्तियों के बीच भी मनुष्य आत्मविश्वास के सहारे आगे बढ़ता जाता है तथा अपनी मंजिल पर पहुँचकर रहता है।

मानव जाति की उन्नति के इतिहास में महापुरुषों के आत्मविश्वास का असीम योगदान रहा है। भौतिक दृष्टि से तात्कालिक असफलताओं को शिरोधार्य करते हुए भी उन्होंने विश्वास न छोड़ा और अभीष्ट सफलता प्राप्त की। आत्मविश्वास का जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। लौकिक एवं अलौकिक सफलताओं का आधार यही है। उसके सहारे ही निराशा में आशा की झलक दीखती है। दुःख में भी सुख का आभास होता है। इससे बड़े-बड़े कार्य संपन्न किए जा सकते हैं, किए गए हैं। चीन की दीवार, मिस्र के पिरामिड, पनामा नहर एवं दुर्गम पर्वतों पर विनिर्मित सड़कें व भवन इसका प्रत्यक्ष प्रमाण देते हैं।

वस्तुतः समस्त शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का आधार आत्मविश्वास ही है। इसके अभाव में अन्य सारी शक्तियाँ सुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं। जैसे ही आत्मविश्वास जाग्रत होता है, अन्य शक्तियाँ भी उठ खड़ी होती हैं और आत्मविश्वास के सहारे असंभव समझे जाने वाले कार्य भी आसानी से पूरे हो जाते हैं।

वैयक्तिक जीवन में भी आत्मविश्वास ही संपूर्ण सफलताओं का आधार है। विश्वास के अभाव में ही श्रेष्ठतम उपलब्धियों से लोग

वंचित रह जाते हैं। असफलताओं का कारण है—अपनी क्षमता को न पहचान पाना और अपने को अयोग्य समझना। जब तक अपने को अयोग्य, हीन, असमर्थ समझा जाएगा, तब तक सौभाग्य एवं सफलता का द्वार बंद ही रहेगा।

व्यक्ति जब अपने अंदर छिपी हुई शक्तियों के स्रोत को जान लेता है तो वह भी देवतुल्य बन जाता है। विश्वास के जाग्रत होते ही आत्मा में छिपी हुई शक्तियाँ प्रस्फुटित हो उठती हैं। हमारे अंदर के श्रेष्ठ विचार महत्त्वपूर्ण कार्य के रूप में परिणत हो जाते हैं। इसके विपरीत अपने प्रति अविश्वास से तो शक्ति के स्रोत सूख जाते हैं और लोग भंडार के होते हुए भी दीन तथा दरिद्र ही बने रहते हैं।

अपने विषय में जैसी मान्यता बनाई जाती है, इसके द्वारा भी वैसा ही व्यवहार किया जाता है। जो व्यक्ति अपने को मिट्टी समझता है, अवश्य कुचला जाता है। धूल पर सभी पाँव रखते हैं किंतु अंगारों पर कोई नहीं रखता। जो व्यक्ति कठिनतम कार्यों को भी अपने करने योग्य समझते हैं, अपनी शक्ति पर विश्वास करते, वे चारों ओर अपने अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेते हैं। जिस क्षण व्यक्ति दृढ़तापूर्वक किसी कार्य को करने का निश्चय कर लेता है तो समझना चाहिए कि आधा कार्य पहले ही पूर्ण हो गया। दुर्बल प्रकृति के व्यक्ति शेखचिल्ली के समान कोरी कल्पनाएँ मात्र किया करते हैं किंतु मनस्वी व्यक्ति अपने संकल्पों को कार्य रूप में परिणत कर दिखाते हैं।

विराट वृक्ष की शक्ति छोटे से बीज में छिपी रहती है। यही बीज खेत में पड़कर उपयोगी खाद-पानी प्राप्त करके बड़े वृक्ष के रूप में प्रस्फुटित होता है। उसी प्रकार मनुष्य के अंदर भी समस्त संभावनाएँ एवं शक्तियाँ बीजरूप में छिपी हुई हैं, जिनको विवेक के जल से अभिसिंचित कर तथा श्रेष्ठ विचारों की उर्वरा खाद देकर जाग्रत किया जा सकता है। यदि व्यक्ति अपने अंदर की अमूल्य शक्ति एवं सामर्थ्य को जान लेने में सफल हो जाए तो वह सामान्य से असामान्य और असामान्य से महान हो सकता है।



मनुष्यों की संगठित शक्ति यदि श्रेष्ठ मार्ग पर चल पड़े तो विश्व का कायाकल्प ही हो सकता है। शक्ति के उदित होते ही असंभव समझे जाने वाले कार्य भी संभव हो जाते हैं, जिनको पूर्ण हुए देखकर आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता।

मानव जीवन ईश्वर का दिया हुआ सर्वोपरि उपहार है। इसका महत्त्व एवं गरिमा तभी है जब व्यक्ति इन पंगु विचारों को अपने मन में स्थान न दे। उनसे शक्ति का प्रवाह बंद हो जाता है। ईश्वरीय अनुदान एवं दी हुई शक्ति का महत्त्व जीवन के सदुपयोग में है। अपने को उठाना तथा दूसरों को भी उठाने में सहयोग करने में ही मानव जीवन की सार्थकता है।

जब तक हम किसी कार्य में अपनी समस्त शक्तियाँ लगा नहीं पाते, मन एकाग्र नहीं करते, तब तक वह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। कार्य जितना कठिन होता है, उसके लिए उतने ही दृढ़ विश्वास एवं योगी की तरह तन्मय होकर निरंतर प्रयत्न करने की आवश्यकता होती है। ईश्वरीय सत्ता भी उन्हीं की सहायता करती है जो स्वयं प्रयत्नशील हैं।

आत्मविश्वास, सतत परिश्रम एवं दृढ़ निश्चय के समक्ष कुछ भी असंभव नहीं है। इन्हीं गुणों के प्रकाश में ऐतिहासिक कार्य संसार में संपन्न हुए हैं। विद्वानों, महापुरुषों, धर्मप्रवर्तकों, योद्धाओं, सृजेताओं, शोधकर्ताओं के ज्वलंत उदाहरण इस बात के साक्षी हैं कि उन्होंने आत्मविश्वास के आधार पर क्या नहीं कर दिखाया?

छोटी-छोटी बैटरियों की शक्ति शीघ्र ही समाप्त हो जाती है किंतु जिन बत्तियों का संबंध पावर हाउस से होता है, वे निरंतर जलती रहती हैं। आत्मविश्वास वह संपर्क माध्यम है जिसके सहारे अकूत शक्ति के भंडार परमात्मा के साथ संबंध स्थापित किया जा सकता है। मनुष्य को चाहिए कि वह अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करे। स्वार्थ से दूर रहकर अपनी दृष्टि का विकास करे। सद्गुणों को धारण कर इसी जीवन में गौरवान्वित एवं सम्मानास्पद बना जा सकता है।

श्रेष्ठ मार्ग पर नियोजित व्यक्तियों की शक्तियाँ श्रेयस्कर परिणाम उपस्थित करती हैं, जिसे लोग भाग्य का चमत्कार समझते हैं। वास्तव में वे व्यक्ति की दृढ़ निष्ठा एवं आत्मविश्वास का परिणाम ही होती हैं।

## विधेयात्मक ही सोचें, रचनात्मक ही विचारें

मनोवैज्ञानिक डॉ. नारमन विन्सेंट पीले के अनुसार मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास उसके चिंतन और चरित्र पर निर्भर करता है। निषेधात्मक या विधेयात्मक चिंतन एक प्रकार की विचार शैली है जिसमें व्यक्ति विषम या प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपना मनोबल ऊँचा बनाए रहता है और अच्छे परिणामों की आशा रखता है। विपन्न परिस्थितियाँ, प्रतिकूलताएँ एक नया स्वर्णिम सुअवसर लेकर आती हैं जिनसे वह सबक सीखना और अपने व्यक्तित्व को निखारना, प्रखर बनाना अनिवार्य समझता है। विधेयात्मक पक्ष की ओर देखना, सोचना, संकल्पयुक्त विवेकशील मन की एक प्रक्रिया है जो व्यक्ति के चयन पर निर्भर करती है।

अच्छाइयों में आस्था रखने वाले आत्मविश्वासी-उत्साही व्यक्ति के मन-मस्तिष्क में यह बात सदैव जीवंत बनी रहती है कि प्रगति का एक दरवाजा बंद हो जाने पर सुनिश्चित रूप से दूसरे अनेक रास्ते खुलेंगे ही। विधेयात्मक दृष्टिकोण अपनाने वाले सदैव बुराइयों से अपना पीछा छुड़ाने और अच्छाइयों को अपनाने का प्रयत्न करते हैं। फलतः अच्छाइयाँ उनके जीवन और दृष्टिकोण का अंग बन जाती हैं। ऐसे व्यक्ति उज्ज्वल भविष्य की ओर देखते हैं और अंधकारमय क्षणों-प्रतिकूल परिस्थितियों में अधिक प्रफुल्ल, उत्पादक और रचनात्मक दिशाधारा अपनाते हैं। यह मनोदशा ही उन्हें द्रुतगति से सफलता की ओर ले जाती है। उत्साही व्यक्ति ही इन विघ्न-बाधाओं से लोहा लेते और उन्हें निरस्त करते हुए प्रगतिपथ पर आगे बढ़ते हैं।

प्रख्यात विचारक एवं मनीषी विलियम जेम्स के अनुसार, संसार में दो तरह के व्यक्ति पाए जाते हैं। पहले हैं-टफ माइंडेड (सख्त स्वभाव वाले) तथा दूसरे हैं-टेंडर माइंडेड (नरम स्वभाव वाले संवेदनशील व्यक्ति) नरम स्वभाव वाले व्यक्ति कठिनाइयों, विघ्न-बाधाओं के उपस्थित हो जाने पर विचलित हो उठते हैं। आलोचना किए जाने पर तो उनका दिल ही बैठ जाता है। वे ऐसे व्यक्ति होते हैं

जो रिरियाते, चीखते-चिल्लाते भर हैं और कुछ न कर पाने के कारण असफलता ही उनके हाथ लगती है। सख्त मिजाज वालों की स्थिति इनसे भिन्न होती है। जीवन के हर क्षेत्र में वे सक्रिय और सफल होते देखे जाते हैं। कैसी ही विषम कठिनाई या प्रतिकूलता क्यों न हो उससे वे हार नहीं मानते। प्रतिकूलता को ईश्वर का वरदान समझकर नई सूझ-बूझ के साथ उसका सामना करते हैं। विश्वप्रख्यात लेखक स्काट निवासी थामस कार्लाइल ऐसे ही थे जिन्हें अपनी सारी जिंदगी फाका-मस्ती में काटनी पड़ी थी। फिर भी अध्यवसाय के बलबूते वे सफलता की चरम सीमा तक पहुँचे थे। उनकी समाधि पर बने चबूतरे के एक ओर खुदी उनकी कुछ प्रेरक पंक्तियाँ आज भी स्काटवासियों के लिए ही नहीं, वरन समस्त विश्ववासियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं। प्रेरक पंक्तियों का निष्कर्ष है, “न तो कभी निराश हो और न कभी हार मानो। उठो, खड़े हो जाओ और संघर्ष करो जब तक विजयी न हो जाओ। ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा।” कार्लाइल कहते हैं— “जीवन हममें से प्रत्येक से यही पूछता है कि क्या तुम बहादुर बनोगे अथवा कायर बनना पसंद करोगे? निश्चय ही हमें मजबूत, निर्भय और उत्साही बनना होगा। विधेयात्मक चिंतन करने वाला व्यक्ति कायर नहीं हो सकता। वह स्वयं के जीवन में, मानवता और ईश्वर में विश्वास रखता है। अपनी योग्यता और क्षमता को पहचानता है। वह निर्भीक एवं अपराजेय होता है। जो कुछ सामने आता है, उसी से अपने उपयोग की अच्छाइयाँ छँट लेता है।”

भली-बुरी परिस्थितियों का निर्माण करना, बहादुर या कायर बनना व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। विधेयात्मक पक्ष अपनाने पर कायर व्यक्ति भी धीरे-धीरे निडर और हिम्मत वाला बन जाता है, उसकी सारी परिस्थितियाँ पलट जाती हैं। अपनी त्रुटियों को पहचानना, उन्हें सुधारना, किए पर पश्चात्ताप करना, दंड पाना और भविष्य में वैसा न होने देने को कृतसंकल्पित होना अनिवार्य है। मन में सद्विचारों, सत्कर्मों और दृढ़ संकल्पों की त्रिवेणी जहाँ सदैव हिलोरें मारती रहती हैं, वहाँ प्रगति का रुका हुआ अवरुद्ध मार्ग अपने

आप ढह जाता है। सद्विचारों में असीम शक्ति होती है। विचार गत्यात्मक, जीवंत और रचनात्मक हों तो व्यक्ति परिस्थितियों को बदल सकता है, उन पर नियंत्रण कर सकता है और अपना भविष्य सुखमय बना लेता है। लेकिन यदि विचार हेय स्तर के घृणा, बेईमानी और असफलता से भरे हुए हैं तो वे व्यक्ति तथा समाज के लिए विनाशकारी परिस्थितियाँ उत्पन्न करते हैं।

डिजराइली कहा करते थे कि हमें अपने मस्तिष्क को महान विचारों से भर लेना चाहिए तभी हम महान कार्य संपादित कर सकते हैं। लोग क्षुद्र विचारों को अपने बारे में, अपने बीबी-बच्चों, परिवार, व्यापार आदि के संबंध में ही सोचते और मरते-खपते रहते हैं। परिणामतः उसी स्तर के प्रतिफल भी उन्हें हाथ लगते हैं। यह एक तथ्य है कि जितना महान दृष्टिकोण और ऊँचे विचार होंगे, उसी अनुपात में हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता जाएगा। मनोवैज्ञानिकों की अवधारणा है कि मन-मस्तिष्क या अंतःकरण में उठने वाली वैचारिक तरंगें, कल्पनाएँ या भावनाएँ हमारे व्यक्तित्व को प्रकाशित करती हैं।

